222hi25

25

आत्म–विकास और योग

पिछले पाठ में हमने विभिन्न प्रकार के योग, उनके अर्थ, प्रकृति व साथ ही साथ उनके अभ्यास को समझने का प्रयास किया जो कि शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को प्राप्त करने में सहायता करते हैं। वास्तव में योग हमारे जीवन को आनन्दमय बनाता है। जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ योग उपयोगी नहीं हैं यह जीवन की तरफ हमारे दृष्टिकोण को बदलता है। यह हमारी रचनात्मकता को जगाता है और दूसरे के साथ हमारे सम्बन्धों को मजबूत करता है। योग के प्रकाश में कुछ भी केवल सांसारिक नहीं रह जाता बल्कि सब कुछ उत्कृष्टता को छू लेता है और हम आत्म–नियंत्रण और नैतिकता का निर्माण करते हैं। इस प्रकार आत्म केवल व्यैक्तिक क्रियाओं से संबंधित विशेषता नहीं है। वह इससे कहीं उच्च है और उस सामाजिक जगत से जोड़ता है जिसमें हम रहते हैं। आत्म का हमारा विचार सामाजिक जगत के साथ हमारी अन्तःक्रियाओं को प्रभावित करता है और उससे प्रभावित भी होता है। हम उन्नति चाहते हैं और उसके लिए संघर्ष करते हैं। सफलता लक्ष्य की ओर सकारात्मक धारणा अपने और दूसरों में विश्वास के साथ निरन्तर एवं अथक संघर्ष का परिणाम होती है। यह आत्म विकास है। इस पाठ में हम समझेंगे कि योग आत्म विकास में कैसे योगदान करता है और क्षमता के लिए योग की क्या सार्थकता है।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के बाद आप :

- योग जीवन के विभिन्न पहलुओं में कैसे सहायता करता है की व्याख्या कर सकेंगे;
- यह हमारे व्यवहार, अभिवृत्ति व चिन्तन को कैसे आकार देता है का वर्णन कर सकेंगें;
- क्षमता के लिये योग की सार्थकता की व्याख्या कर सकेंगे; और
- प्रगतिशील आत्म विकास के लिये अष्टांग योग की विवेचना कर सकेंगे।

25.1 योग के द्वारा आत्म–विकास

अधिकतर सभी लोग इससे सहमत होंगे कि मानव में आत्म होता है। साधारणतः हम 'आत्म' शब्द का प्रयोग अहम् के रूप में करते हैं लेकिन 'आत्म' का मतलब केवल अहम् नहीं है। भारतीय विचारधारा के अनुसार हमारे अन्दर का अहम् एक अभिनेता, ज्ञाता और अनुभवकर्ता है। यह शरीर और मन की कार्य प्रणाली को सम्पादित करता है, साधारणतः ये 'मैं' या 'अहम्' के रूप में जाना जाता है। लेकिन यह केवल पूर्णता का प्रतिबिम्ब है जिसे ब्रह्म या शुद्ध चेतना कहा जाता है। यह कहा जाता है कि अहम दिव्य ज्योति का प्रतिरूप है जो हमारे अन्दर है जो इसे स्फूर्ति देता है और शारीरिक व मानसिक कार्य करवाता है। इसका अपने गुण और क्रियाओं के साथ स्पष्ट अस्तित्व संसाधित होता है। जैसे लोग बढ़ते हैं, वे आत्म की अपनी धारणा बनाते हैं जो कि निर्धारित करता है कि कैसे वो दूसरों से जुड़ते हैं और विभिन्न क्रियाकलापों को प्रतिपादित करते हैं। हम लोगों को व्यक्ति के रूप में देखते हैं, उनसे जुड़ते हैं, मित्रता और अन्य प्रकार के निकट सम्बन्ध बढ़ाते हैं। हमारी आत्म की संकल्पना स्थिर नहीं रहती अपितु जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में परिवर्तित होती रहती है। आइए अब देखें की जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में आत्म का विकास कैसे होता है।

शैशवावस्था: विभिन्न आयु समूह के बच्चे, जो कुछ देखते हैं, उसके प्रति अलग–अलग तरह से प्रतिक्रिया करते हैं। शिशु में दो वर्ष की अवस्था तक आत्म–पहचान की दृष्टि पायी जाती है लेकिन स्पष्ट आत्म की पहचान तीन वर्ष की आयु में भी नहीं पायी जाती है। बचपन में आत्म भाव मूर्त रूप में रहता है।

बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था: प्रारम्भिक बाल्यावस्था में शिशु निश्चित मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर स्वयं को परिभाषित करते हैं। वे धारणाओं के बारे में सोचना शुरू करते हैं। किशोरावस्था में आत्म का चित्रण सूक्ष्म हो जाता है। वे समझते हैं कि सभी के साथ और हर स्थिति में वे एक तरह के व्यक्ति नहीं हैं। व्यक्ति की पहचान बताती है कि वह कौन है और उसके मूल्य और आदर्श क्या हैं। कई किशोर अपनी पहचान को समझने में द्विधा का अनुभव करते हैं। वे आत्म का संगत और स्थिर बोध करने में असमर्थ रहते हैं। उनको कर्तव्यों, मूल्यों और व्यावसायिक विकल्पों के निर्धारण में परेशानी होती हे। कुछ किशोर अपनी पहचान को महत्वपूर्ण आत्म परीक्षण और अन्तर्दशन के बाद सिद्ध करते हैं। कुछ लोग अधिक प्रयास के बिना ही ऐसा कर लेते हैं।

प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था: विकास की अवस्था में घनिष्ठता या अकेलेपन की चुनौती होती है। घनिष्ठता से तात्पर्य है सम्बन्धों की प्रतिबद्धता में स्थायित्व का आना। इसमें रोमांचक प्रेम या मैत्री सम्बन्ध आते हैं। विकास के क्रम में व्यक्ति को माता/पिता, चाचा/चाची की अपनी भूमिका स्पष्ट करने की आवश्यकता होती है।

प्रौढ़ावस्था (मध्य अवस्था): जीवन की इस अवस्था में लोग अगली पीढ़ी के सम्बन्ध में और समाज के लिए योगदान के प्रति चिंतित हो जाते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति उत्पादक

क्रिया–कलापों का बड़ा संकट झेलता है। तभी तो प्रौढ़ावस्था का संकट एक आम कथन बन चुका है। यह सामान्य जीवन की लय में अवरोध लाता है। कुछ के लिये प्रकृति में यह परिवर्तन क्रमिक है और कुछ के लिये थोड़ा उग्र।

बृद्धावस्थाः सामाजिक गतिशीलता और परम्परागत पारिवारिक सम्बन्धों में बहुत से वृद्ध व्यक्ति सामाजिक सहारे की कमी और पुरानी आत्म धारणा से पीड़ित होते हैं। जबकि जो अपनी पुरानी जिन्दगी को सन्तोष के साथ देखते हैं जिसे उन्होंने अच्छी तरह जिया है वे आत्मसंतोष का अनुभव करते हैं। दूसरे दुःख और निराशा अनुभव कर सकते हैं।

जैसा कि हम पाते हैं कि आत्म का विचार विभिन्न स्वरूपों में प्रतीत होता है और व्यक्ति के जीवन में निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। यह लोगों के अनुभवी संसार में परिवर्तन के रूप में प्रतिबिम्बित होता है।

जबकि आत्म का विचार दूसरे की आशाओं का चित्रण नहीं है। वे एक प्रभावकारी शक्ति रूप में भी कार्य करते हैं जो सामाजिक स्थिति में व्यवहार को निर्देश देते हैं और पारस्परिक क्रियाओं को आकार देते हैं। आत्म रूपान्तरित होता जाता है और बहुत से मौलिक तत्व उसमें जुड़ते और अलग होते जाते हैं। लोग अक्सर एक आदर्श आत्म के लिये संघर्ष करते हैं उनसे समाज की स्वस्थ प्रगति में योगदान की आशा की जाती है, जिसमें वे रहते हैं।

विश्व के सभी प्रसिद्ध व्यक्तियों ने समाज की उन्नति में योगदान दिया है। वे अपनी सत्यनिष्ठा के लिये जाने जाते हैं। अच्छे सत्यनिष्ठ लोग न केवल अपनी व्यक्तिगत उन्नति में बल्कि समाज की उन्नति व विकास में भी योगदान करते हैं।

आरम्भ की अवस्था में बालक अपने व दूसरों के आत्म में भिन्नता करने मे परेशानी महसूस करते हैं। वे रोते हें जब दूसरे रोते हैं, हँसते हैं जब दूसरे हँसते हैं।एक वर्ष के बाद वे धीरे–धीरे उस आत्म बोध को विकसित करते हैं। जैसा कि आत्म केन्द्रित विचार द्वारा बताया गया है। वे दूसरों की इस तरह से मदद करते हैं कि उन्हें ऐसा लगता है कि उन्हें भी मदद की आवश्यकता पड़ेगी। तीसरी अवस्था में बच्चे निश्चित परानुभूति की स्थिति को दिखाते हैं। अन्ततः जब वे चौथी अवस्था, में पहुंचते हैं तो वे अपनी विपत्ति के भाव को दूसरों के साथ जोड़ने लगते हैं जब दूसरे भी विपत्ति में होते हैं। वास्वत में चौथी अवस्था में ही वे समुचित परानुभूति का प्रदर्शन करते हैं, अर्थात् दूसरे उनसे भावनात्मक सहारा पाते हैं जो कि उपयुक्त परानुभूति की प्रतिक्रिया का प्रदर्शन है।

बच्चे महत्वपूर्ण लोगों का अनुकरण करके सहायता करने का व्यवहार सीख सकते हैं (जैसे माता–पिता, भाई–बहन, अध्यापक)। जिम्मेदारी लेने का अवसर वांछित व्यवहार को पुनर्बलित करना और जब ऐसा होता है तो यह अनुकूल सामाजिक व्यवहार के विकास को दृढ़ करता है।

योग आत्म विकास में एक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता हैं। यौगिक आसनों, प्राणायाम और ध्यान द्वारा शरीर, मन, प्राणशक्ति, और बुद्धि उचित रूप से पोषित होते हैं, जिससे स्वस्थ

विकास होता है। यह आत्म महत्ता, आत्म विश्वास और आत्म–सम्मान को बढ़ाता है। योग वास्तव में एक व्यवस्थित और पूर्णतया संयमित जीवन शैली है। आओ देखें कि योग कैसे हमारे रोजमर्रा के क्रिया–कलापों में उपयोगी है जैसे अध्ययन में, समाज के दूसरे लोगों के साथ सम्बन्ध में, कार्य–क्षेत्र में उन्नति में और अपने स्वास्थ्य को बनाने में। हमारी धारणायें चिन्तन और व्यवहार हमारे आत्म–बोध को प्रतिबिम्बित करते हैं। हम अगले खण्ड में अध्ययन करेंगे कि कैसे योग हमारी धारणा, चिन्तन और व्यवहार को बनाने में सहयोगी है।

पाठगत प्रश्न 25.1

रिक्त स्थान भरो:

1. दृष्टिगत आत्म संकल्पना ..... में पायी जाती है।
2. प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बच्चे स्वयं को ..... के आधार पर परिभाषित करते हैं।
3. प्रौढ़ावस्था में एक व्यक्ति ..... के संकट का सामना करता है।
4. आत्म–विकास में ..... एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

25.2 जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में योग के प्रयोग

अ) **अध्ययन:** हमारे अध्ययन की तैयारी में मुख्य बाधा यह है कि हम घंटों एक साथ पढ़ते हैं और मुश्किल से कुछ ही ध्यान रख पाते हैं। क्योंकि हमारा मन इधर–उधर विचरण करता है और पाठ को याद करने में स्थिर नहीं रह पाता।

योग के अभ्यास में जब हम आसन और प्राणायाम करते हैं, हमारी श्वांस लम्बी और गहरी हो जाती है। हम अपने ध्यान को एक निश्चित बिन्दु पर केन्द्रित करते हैं। जब यह केन्द्रित मन अध्ययन के लिये प्रयोग किया जाता है तो यह विचारों और धारणाओं को भली–भाँति समझ लेता है। यह याद करने की सामग्री को और अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से याद रख सकता है। दूसरे शब्दों में योग हमारी स्मृति और सीखने की क्षमता को बढ़ाता है। जब हम किसी परीक्षा में बैठते हैं, हमारा मन शान्त और स्थिर होता है। और एक अप्रत्याशित प्रश्न हमें परेशान नहीं करता।

यदि हम कभी बहुत कठिन अध्ययन करते हैं और प्रत्याशित परिणाम नहीं पाते हैं तब हमारा मन चिन्ता एवं उदासी में धुंधला हो जाता है। योग का निरन्तर अभ्यास हमें उदासी से मुक्त कर देता है। योग हमें सिखाता है कि कैसे हम आत्म संलग्न होकर अच्छा से अच्छा करने की कोशिश करें। और बाकी सब कुछ भगवान के हाथ में छोड़ दें।

ब) सम्बन्धः अपने चारों तरफ के लोगों से सम्बन्ध हमारे लिये सुख और दुख दोनों लेकर आते हैं। हम अपने दोस्तों, पारिवारिक सदस्यों और कार्य–स्थल के साथियों से निरन्तर पूर्णता खोजते हैं। जब हम योग का अभ्यास करते हैं, तब सहयोग, प्रतिस्पर्द्धा का स्थान ले लेता है। दूसरों से तर्कहीन व स्थिर मांग के बजाय, हम दूसरों को निःस्वार्थ प्यार देना सीखते हैं। मित्र बनाते समय हम बाह्य रूप के बजाय, आन्तरिक गुणों को अधिक महत्व देते है। महर्षि पतंजलि ने सम्बन्धों में हमारी प्रतिक्रिया के बारे में महत्वपूर्ण सलाह दी है। वह कहते हैं 'उनसे मित्रता बनाओ जो जीवन के उच्च मूल्यों के प्रति जाग्रत हों और अभ्यास करने की कोशिश करें। उनकी संगति में गलतफहमी की कम सम्भावना है। जो दुःख में है उनके लिये हमें संवेदना होनी चाहिये। हमें आत्म केन्द्रित नहीं होना चाहिये। हमें दूसरों की उन्नति और समृद्धि से प्रसन्न होना चाहिये। हमारे मन में ईर्ष्या व स्पर्धा की छाया भी नहीं होनी चाहिये। दुष्टों के प्रति हम उदासीन रहना चाहिये। उनके बुरे कार्यों के प्रति अपनी मानसिक या भावनात्मक मूल्यवान शक्तियों का उपयोग उचित नहीं है। दूसरों के प्रति असहिष्णु होना और अनावश्यक चिड़चिड़ाना हमारे मन को दूषित करता है। हम दूसरों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया के प्रति जागरूक हो सकते हैं और नकारात्मक परिस्थिति में भी सकारात्मक प्रति उत्तर की आदत उत्पन्न कर सकते हैं, यह संवेगात्मक संतुलन है। यह केवल योग के निरन्तर अभ्यास से प्राप्त किया जा सकता है।

स) कार्यः आत्म अभिव्यक्ति और अभिवृद्धि के लिए कार्य या रोजगार को आनन्द के अवसर के रूप में देखना चाहिये। हम दफ्तरों में क्या देखते हैं? बोरियत, घड़ी देखना, राजनीति, प्रबन्धन और काम करने के बीच लड़ाई। अपने कार्य को हमें इस दृष्टि से देखना चाहिए कि हम उसमें क्या देते हैं, बजाय इसके कि हम उससे क्या प्राप्त करते हैं। उचित आसन, गहन श्वांस, और सौम्यता से हाथ–पांव को खींचना या फैलाना आपके कार्य स्थल पर आपको तनावरहित व आराम से रहने में आपकी सहायता करेगा। एक क्षण का विराम और अपनी श्वांस पर दृष्टि, तुरन्त आराम देता है। अपने काम में रचनात्मक होना अच्छा है। कार्य को करने के नये मार्ग ढूंढने की कोशिश करिये। रोजमर्रा के कार्यों को सीखने में भी आनन्द प्राप्त करिये। गीता में कहा गया है कि फल की इच्छा किये बिना कार्य को श्रेष्ठ तरह से करने के कौशल को ही योग कहते हैं।

द) स्वास्थ्यः हम बीमार क्यों पड़ते हैं? सामान्यतः यह हमारे शारीरिक और मानसिक तंत्र में असंतुलन के कारण होता है। अन्तर्द्वन्द जीवनी शक्ति या प्राण के बहाव में अवरोध उत्पन्न करके रोगों को जन्म देता है। बीमारी, अवसाद, उद्दिग्नता आदि सभी नकारात्मकता के लक्षण हैं ओर जीवनी–शक्ति के बहाव में अवरोध हैं। ध्यान और प्राणायाम के द्वारा हम धीरे–धीरे नकारात्मकता से बाहर आ सकते हैं और अपनी प्राकृतिक जीवन्त स्वास्थ्य और ऊर्जा की स्थिति का पुनः अनुभव कर सकते हैं। प्राण जीवनी–शक्ति या प्राणिक ऊर्जा बिना हमारे सहज नियंत्रण या हमारी चेतना के जाने शरीर में बहती है जहाँ इसकी आवश्यकता होती है। इच्छा शक्ति और यौगिक कौशलों के प्रयोग द्वारा जीवन–शक्ति को निर्देशित करना संभव है जहाँ हम चाहते हैं। इससे सम्पूर्ण प्रणाली को जीवन्त बनाना, घाव या रोगी अंगों को ठीक करना या यहाँ तक कि दूसरों को भी ठीक करना सम्भव है।

इच्छाशक्ति मुख्य यंत्र है जो प्राणिक शक्ति को शरीर के अन्दर ले जाता है और उसको बहने का निर्देश देता है जहाँ इसकी आवश्यकता होती है। मानव की इच्छाशक्ति और जीवनी शक्ति के बीच सम्बन्ध ही घाव को भरने की कुंजी है।

पाठगत प्रश्न 25.2

1. योग हमारे अध्ययन में कैसे सहायता करता है?

2. व्यक्ति को कार्य को कैसे समझना चाहिये?

25.3 योग हमारी अभिवृत्ति, चिन्तन और व्यवहार को कैसे ढालता है

प्रत्येक व्यक्ति महसूस करता है कि वह एक सुखी एवं सफल व्यक्ति बने। हमारी प्रसन्नता और उन्नति हमारी अभिवृत्ति, चिन्तन और व्यवहार के प्रतिमान पर आधारित होती है योग विश्वास दिलाता है कि अगर हम जीवन और चिन्तन की स्वस्थ अभिवृत्तियों और आदतों को अपनाते हैं तो हमारे स्वप्न पूरे हो सकते हैं। आनन्दमय और प्रभावी जीवन के लिये प्राचीन ज्ञान को कुछ व्यवहारिक बिन्दुओं की तरफ मोड़ा जा सकता है। जिनमें से कुछ निम्नवत हैं–

अ) अपने पर्यावरण के प्रति असंतोष प्रकट न करें: हो सकता है कि कुछ लोग अपने माता–पिता, अपनी आर्थिक और सामाजिक स्थिति से प्रसन्न न हों। वे अपनी काया, स्वरूप और बुद्धि से भी प्रसन्न न हों। वे हमेशा दूसरों की तरफ देखते हों, उनसे ईर्ष्या करते हों और दुखी होते हों। वे सोच सकते हैं कि ''काश मेरी माँ उसकी तरह होती।'' या ''मैं उस विद्वान या उस विजेता की जगह होता।'' यह उचित नहीं है कि जो हमारे पास है उसके प्रति असंतोष प्रकट करे। यह सोचना अच्छा है कि कैसे हम इसे अच्छा बना सकते हैं। संसार के बहुत से महान व्यक्ति अपनी शारीरिक अक्षमता और विरोधी परिस्थिति के विरुद्ध लड़ें और सफल हुये।

हममें से प्रत्येक में कुछ न कुछ स्वाभाविक गुण हैं। हमें अपने गुणों को पहचानना है। हो सकता है कि आप में शैक्षणिक विद्वता न हो लेकिन यह सामाजिक या कुछ और तरह की विद्वता हो सकती है। हम पढ़ाई में अच्छे नहीं हैं लेकिन हम यन्त्र के काम में अच्छे हो सकते हैं जो कि एक बराबर ही महत्वपूर्ण है। हममें एक गायक, चित्रकार या अभिनेता बनने की क्षमता हो सकती है। हमारा एक लक्ष्य हो और उसकी तरफ बढ़ने के लिए हम कदम बढ़ायें। यौगिक क्रियायें हमारे शरीर, मन और बुद्धि को मजबूत बनाती हैं हम अपने निर्णय लेने में सक्षम हो जाते हैं।

ब) शरीर को पहले प्रशिक्षित करें: योगासन हमको अकर्मयता एवं आलस्य से छुटकारा दिलाते हैं। वे हमारे शरीर में नया उत्साह लाते हैं। वे हमें बीमारी और तनाव से मुक्ति दिलाते हैं जिससे कि हम अपने लक्ष्य की तरफ पूरी तरह से ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं।

हम अपने शरीर को कैसे प्रशिक्षित करें? अपने भोजन पर ध्यान दें। बिना वजह खाने से और कम खाने से बचें। ऐसा भोजन चुनें जो हमारे अनुकूल हो और शरीर में सामंजस्य लाए। भोजन का पाचन, शरीर में उसका समांगीकरण और मल का त्याग नियमित हो। विश्राम और वांछित निद्रा भी हमारे शरीर को स्वस्थ रखने के लिये आवश्यक है।

स) अपने मन को प्रशिक्षित करें: योग में स्वाध्याय बहुत आवश्यक है। यदि मन को मजबूत बनाने के लिये प्रशिक्षित करते हैं तो यह मजबूत होगा। यदि लाड़ले बच्चे की तरह इसे कमजोर छोड़ देंगे तो वह कमजोर और नाजुक हो जाएगा। वह छोटे से आघात से नष्ट या खत्म होने लगेगा। अपने पर दया करने से बचें। क्योंकि यह हमें कमजोर बनाता है। हमेशा नकारात्मक विचारों जैसे ईर्ष्या, जलन और संकुचित दृष्टिकोण से बचें। कुछ विद्यार्थी अपने नोट्स का आदान–प्रदान नहीं करते हैं। क्योंकि वे सोचते हैं कि कोई उनका ज्ञान चुरा लेगा। वे भूल जाते हैं कि जितना हम देंगे उतना ही हमारा ज्ञान बढ़ेगा। आश्रित होने का विचार निकाल दें। संसार में कोई व्यक्ति या वस्तु ऐसा नहीं है जिसके बिना हमें रहना असम्भव हो। कुछ भी अपरिहार्य नहीं है। कुछ लोगों, समुदायों और राष्ट्रों ने धूल से जीवन का निर्माण किया है। जापान इसका एक जीवन्त उदाहरण है, हम क्यों नहीं कर सकते?

द) बुद्धि को प्रशिक्षित करें: अगर हम अपनी बुद्धि को कोई चुनौतीपूर्ण कार्य नहीं देते हैं तो उस पर जंग लग जाती है। वह शक्तिशाली चीजों को करने की क्षमता खो देती है। वास्तव में, हम अपने मस्तिष्क को पूर्ण रूप से प्रयोग में नहीं लाते हैं। यदि मस्तिष्क का अधिक प्रयोग नहीं होता है तो वह जल्दी थक जाता है।

स्वप्न देखना और उनको पूरा करने में अपनी पूरी शक्ति को लगाना ही हमारी बुद्धि को मजबूत बनाता है। हमें अपनी बुद्धि को बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय लेना और अपने निर्णयों पर अडिग रहना सिखाना चाहिये।

पाठगत प्रश्न 25.3

सही जोड़े मिलाओ

1.	प्रसन्न रहने का एकतरफा रास्ता	सोचने की आदत और चरित्र
2.	अनावश्यक खाना	आपके मन को क्षण–भंगुर बनाता है
3.	नकारात्मक विचार	अपने पर्यावरण के बारे में शिकायत करना
4.	दोनों में मजबूत सम्बन्ध हैं	शरीर पर चर्बी जमा करता है

25.4 कार्य में प्रेरणा और श्रेष्ठता के लिए योग

एक कवि ने कहा है

''महान व्यक्ति जिन ऊचाइयों तक पहुँचे और उन्हें बनाए रखा, यह एक ही उड़ान में सम्भव नहीं हुआ

जब उनके साथी रात में सोते थे, तब वे ऊपर चढ़ते जाते थे।''

हम अपने अपने क्षेत्र में, अपने लिये एक दृढ़ संकल्प बना सकते हैं कि जो हम करें, वह उत्तम गुण वाला होगा। फिर चाहे वो अध्यापन हो या टाइपिंग कार्य हो या छपाई, नल ठीक करना या जोड़ना हो। योग आत्मोन्नति के लिए कार्य में निपुणता एवं उत्तमता प्राप्त करने के लिये शरीर और बुद्धि को प्रशिक्षित कर सकता है।

योग की एक परिभाषा जो गीता में दी गई है 'योगः कर्मसु कौशलम्' है। योग कार्य में श्रेष्ठता है। बिना प्रेरणा के क्रिया में श्रेष्ठता नहीं आती है।

हम कार्य क्यों करते हैं? इसके दो कारण हैंः एक तो बिल्कुल स्पष्ट है कि आप इसलिये अपना काम करने हैं, क्योंकि आपको पैसे मिलते है। दूसरा जो स्पष्ट नहीं है कि आप काम करते हो क्योंकि आपको आनन्द मिलता है। यह आपके आत्म–सम्मान को बढ़ाता है, लोग आपकी प्रशंसा करते हैं आप गर्व महसूस करते हो कि आपको जिम्मेदारी दी गई और जितना अच्छा कर सकते थे उतना आपने किया।

जब हम महान लोगों का जीवन परिचय पढ़ते हैं, हम अनुभव करते हैं कि उन्होंने अपने जीवन में ध्रुवतारे की तरह ऊँचे लक्ष्य रखे और वहाँ तक पहुँचने के लिये कठिन संघर्ष किया। उनके जीवन में आलस के लिये कोई जगह नहीं थी। वे अवांछित और उलझे सम्बन्धों को नहीं अपना सकते थे। एकांतिक उद्देश्य के साथ उन्होंने अंततः अपने लक्ष्य को प्राप्त किया। यह योग है। योग आपके द्वारा लिये गये कार्य के लिये आपके शरीर, मन और बुद्धि को तैयार करता है, उसे तीक्ष्ण बनाता है इस तरह वह आपकी सारी ऊर्जा को एक निश्चित दिशा में ले जाता है। महान व्यक्ति महान स्वप्न देखते हैं और उन्हें पूरा करने में अत्याधिक शक्ति का उपयोग करते हैं।

पाठगत प्रश्न 25.4

उल्लेख कीजिये कि निम्नलिखित तथ्य सही हैं या गलतः

1. गीता के अनुसार योग कार्य में श्रेष्ठता है।

____

2. महान पुरुष और महिलाएं जीवन में बिना किसी लक्ष्य के महान हो सकते थे।

3. योग एक निश्चित दिशा में हमारी शक्ति स्वाभाविक रूप से ढालता है।

25.5 पतंजलि के अनुसार मन की प्रकृति

योग महर्षि पतंजलि द्वारा संक्षिप्त रूप में संकलित किया गया था। इस संग्रह को योग–सूत्र कहा गया है। यह मानव के मन की प्रकृति और उसके कार्यों के बारे में बताता है। यह मन के विक्षोभ के कारणों का और उससे उबरने के उपायों का विश्लेषण करता है। यह हमारा ज्ञान वर्द्धन करता है कि हम सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त ऊर्जा या शुद्ध चेतना तक कैसे पहुँचें। योग सूत्र के अनुसार मन, मानस, बुद्धि, अहंकार और चित्त नामक चार विभागों को संयोजित करता है। ये अन्तःकरण कहलाते हैं। मानस संकल्प (मैं इसे करूंगा) और विकल्प (अगर ये नहीं हुआ तो क्या होगा) करता है। बुद्धि पिछले ज्ञान और समझदारी के प्रकाश में निर्णय लेती है। अहंकार केन्द्र बिन्दु है जिसके चारों तरफ सभी संवेग, स्मृतियां और विचार संगठित होते हैं। चित्त वह चेतना है जिस पर प्रतिक्रियाओं की लहरें पैदा होती हैं। विकल्प और चित्त या चेतना, मानसिक प्रतिक्रियाओं के उद्गम स्थान के रूप में देखे जा सकते हैं।

परिवर्तनशील मानसिक अवस्थायें

हमारा मन निम्नांकित अवस्थाओं में पाया जाता है–

1. **क्षिप्तः** अधिकतर हमारा मन बाह्य जगत को अनुभव करने की प्रक्रिया में अपनी रुचि की वस्तुओं के पीछे भागता रहता है। इस प्रकार का वाह्य मन क्षिप्त कहलाता है। (शाब्दिक रूप से बाहर भागता हुआ)
2. **विक्षिप्तः** हमारी चेतना कभी–कभी बाहर की तरफ चली जाती है और फिर कोशिश के साथ अन्दर की तरफ मुड़ जाती है और फिर बाहर की तरफ चली जाती है। अतः विक्षिप्त अवस्था में मन 'अन्दर और बाहर' का खेल खेलता है।
3. **मूढ़ः** जब हम जागरूक नहीं होते हैं और हमारी चेतना शिथिल प्रतीत होती है। यह अवस्था मूढ़ है। एक व्यक्ति जिसका मन साथ न हो, वह सम्मूर्च्छा (कोमा) या दौरे की अवस्था में हो मन की मूढ़ अवस्था है।
4. **एकाग्रः** योग के अभ्यास के समय आप अपनी चेतना को एक निश्चित वस्तु पर एकाग्र करना सीखते हैं। यहाँ यही चेतना की अवस्था एकाग्र है, जोकि रोजमर्रा के कार्यों के लिये और उचित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये उपयोगी है। जब मन एकाग्र हो जाता है, तो यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। योग मन की इस अवस्था को प्राप्त करने में सहायता करता है।

मन की अपेक्षाकृत स्थिर अवस्थायें

चेतना की निरन्तर बदलने वाली अवस्थाओं के अतिरिक्त कुछ अपेक्षाकृत स्थिर ओर नियमित अवस्थायें भी हैं–

1. **जागृतिः** भले–बुरे का ज्ञान पूरी जानकारी के साथ (विवेक)
2. **स्वप्नः** स्वप्न की अवस्था जहाँ कुछ लोग इच्छा पूर्ति का खेल खेलते हैं
3. **सुसुप्तिः** गहरी और स्वप्नरहित नींद
4. **तुरीयाः** यह गहन ध्यान की वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति समय एवं स्थान को भूल जाता है। मान लो कोई ध्यान के लिये बैठता है और चेतना की तुरीया अवस्था में प्रवेश कर जाता है। इस अवस्था में व्यक्ति की चेतना दिव्यता के साथ या वैश्विक चेतना के साथ एक हो जाती है।

पाठगत प्रश्न 25.5

1. योग–सूत्र के लेखक कौन हैं?

2. मन की विभिन्न अवस्थायें क्या हैं?

25.6 योग के अष्टांग मार्ग

पतंजलि जी ने योग के अष्टांगिक मार्गों की विस्तृत विवेचना की है। यदि आप अच्छे स्वास्थ्य और कुशलता से जीना चाहते हैं तो आपको योग के अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करना होगा। योग के अष्टांगिक मार्ग योग की मुख्य शाखा के रूप में जाने जाते हैं।

योग के आठ चरणों की संक्षिप्त विवेचना

1. **यमः** साधारणतः यम हमारी पशुवत् मूल–प्रवृत्तियों पर प्रतिरोध करना है। उदाहरण के लिये लोभ, लालसा, क्रोध और ईर्ष्या से ऊपर आना और इन आवेगों के आधार पर कभी कार्य न करना। यम, व्यवहार के पांच नियम हैं जो मन और व्यवहार को स्वच्छ करता है। जिनमें सामाजिक सम्बद्धता भी है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहाः यमाः (पतंजलि योगसूत्र 2.30)

(i) अहिंसा: इसमें किसी को यहाँ तक कि पशु, पौधों और अजीव को भी कष्ट नहीं पहुँचाते हैं। इसका तात्पर्य है विचार, वाणी और कर्म में अहिंसा, आपको अपने आस–पास के प्रत्येक व्यक्ति व प्रत्येक वस्तु का आदर करना सीखना चाहिये।

(ii) सत्य: सत्य बोलना अर्थात जो हम कहते हैं उसका वही अर्थ है। हमारे शब्द शालीन व छलावा रहित होने चाहिये। वे दूसरों के साथ अच्छा करने की इच्छा से बोलने चाहिये। हम समाज में बहुत सी बुराइयां देखते हैं जैसे भ्रष्टाचार, मिलावट, दवाओं में धोखा–धड़ी, जिसके कारण निर्दोष लोग मर जाते हैं, शत्रु देशों को अपने देश की गुप्त सूचनायें बेचना, ये सब गलत व्यवहार के रूप हैं। यह किसी की निष्ठा के प्रति सामाजिक रूप से घातक और खतरनाक है।

(iii) अस्तेय (चोरी न करना): कभी–कभी हमें उस धन को पाने का लालच होता है जो हमारा नहीं है। कुछ लोगों को रिश्वत लेने की आदत होती है। वे उस कार्य के लिए रिश्वत लेते हैं, जिसकी एवज में उन्हें पहले से ही धन मिल रहा होता है। कुछ लोग दूसरों का श्रेय और प्रसन्नता चुराते हैं। यह सब चोरी है। इन सभी प्रलोभनों से दूर रहना चाहिए। यही अस्तेय है।

(iv) ब्रह्मचर्य: (काम सम्बन्धी क्रिया–कलापों पर रोक थाम) जिस तरह धन का लालच होता है उसी तरह अनैतिक सेक्स में संतोष पाना भी लालच हैं। जबकि यह शक्ति व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास के लिये प्रयोग करने में लाभदायक सिद्ध हो सकती है जैसे शारीरिक शूरता और मन की शक्ति का विकास। यह ब्रह्मचर्य है। इस प्रकार से आप अपनी शक्ति को व्यैक्तिक संतोष और सामाजिक उपयोगी उद्देश्यों की तरफ मोड़ सकते हैं।

अविवाहित और गृहस्थ लोगों का जीवन एक समान शुद्ध हो सकता है, यदि उसकी पवित्रता की रक्षा हो। पति और पत्नी एक दूसरे के प्रति निष्ठावान हों। विचार रहित सम्भोग असाध्य बीमारियों को बुलावा दे सकता है जैसे एड्स इसीलिए महर्षि पतंजलि ने ब्रह्मचर्य की महत्ता पर बल दिया है।

(v) अपरिग्रह: अपरिग्रह का तात्पर्य है कि अपनी आवश्यकता से अधिक का संग्रह न करना क्योंकि ऐसा करके आप उस चीज से, उन्हें वंचित करते हैं जिन्हें वास्तव में उसकी आवश्यकता है।

अब हम नियमों की चर्चा करेंगे।

2. **नियम:** नियम शरीर और मन की पवित्रता के लिये हैं। इनका व्यैक्तिक तौर पर अभ्यास किया जाता है।

(i) शौच: शरीर और मन को स्वच्छ रखना। प्रतिदिन स्नान करना, दाँत साफ करना और स्वच्छ जल पीना। इसमें सभी क्रियाकलाप आते हैं जैसे अनाज, ताजी हरी सब्जियों सहित स्वस्थ भोजन, ये सभी आवश्यक तत्व प्रदान करते हैं जैसे स्टार्च, वसा, विटामिन, लवण, खनिज हमारे शरीर को शक्ति व स्फूर्ति देते हैं। अतः योग

हमें पौष्टिक भोजन खाने की सलाह देता है। यह हमसे अपने शौच क्रिया की आदत में नियमित रहने की आशा करता है, जिससे आपका शरीर विषैले जीवाणुओं (घातक पदार्थ) से मुक्त रह सके।

शौच का मतलब मन की शुद्धता से भी है। हमारे ऋषियों ने छः शत्रुओं को पहचाना है जो हमारे मन को दूषित करते हैं। इसमें शामिल हैं काम– बहुत अधिक इच्छा, क्रोध– गुस्सा, लोभ– लालच, मोह– प्रलोभन, मद–अहंकार, मत्सर– ईर्ष्या। शौच का मतलब है इन छः शत्रुओं से दूर रहना और अपने मन को शुद्ध विचारों से भरना।

(ii) सन्तोषः इसका मतलब है संतुष्ट रहना। आपको अपने हर कार्य में अपना अच्छा करना चाहिये और उसमें खुश रहना चाहिए। कुछ निश्चित कारक हैं जो आपके नियंत्रण से बाहर हैं। अतः यदि आप अपनी आशानुसार सफलता प्राप्त करते हो तो ठीक है और यदि आशानुसार सफलता प्राप्त नहीं कर पाते तो भी ठीक है। खुशी स्वयं के कार्य करने में निहित है।

(iii) तपः तप का शाब्दिक अर्थ तपस्या है। जब हमारी परीक्षा आने वाली होती है, हम सामान्यतः पिक्चर, टी.वी. देखना छोड़ देते हैं। हम अपना समय दोस्तों के साथ बात करने में नहीं व्यर्थ करते। किसी लक्ष्य को प्राप्त करने में हमें गम्भीर प्रयास करते हैं ओर कुछ खुशियों को त्याग कर देते हैं। यह तप है। जब हम योग के मार्ग पर चलते हैं, हमें अपनी इच्छाओं को संयमित करना चाहिये और मन को एकाग्र करना चाहिये।

(iv) स्वाध्यायः इसका शाब्दिक अर्थ स्वयं अध्ययन है। यहाँ इसका तात्पर्य योग से सम्बन्धित सिद्धान्तों का अध्ययन है। अगर हम इसको स्वयं नहीं समझ पाते, तो हमें किसी विशेषज्ञ से मार्गदर्शन लेना चाहिए। स्वाध्याय का प्रयोजन केवल येाग से सम्बन्धिंत साहित्य पढ़ना ही नहीं बल्कि योग के सिद्धान्त पर मनन करना भी है।

(v) ईश्वर प्राणिधानः इसका तात्पर्य जप करते हुये या मन में हर समय ये ध्यान रखते हुये कि हमारे कार्य भगवान की पूजा हैं, भगवान के साथ हमेशा संपर्क में रहना। भगवान उन सभी चीजों का, जो हम देखते, करते और अनुभव करते हैं, साक्षी है।

3. **आसनः** पतंजलि आसन की उस मुद्रा की विवेचना करते हैं जिसमें हम आराम से, सिर, गर्दन और पीठ को सीधा रखकर यौगिक अभ्यास के लिये बैठते हैं। क्योंकि योग हमारे नाड़ी संस्थान से सीधा सम्बन्धित है। हमारी रीढ़ की हड्डी सही स्थिति में होनी चाहिये। चटाई पर पलथी मारकर बैठना या अपने घुटने के बल बैठना साधारणतया यौगिक अभ्यास के लिये निर्धारित किया गया है। (सुखासन, सहजासन या वज्रासन)। योग की परम्परा हमारे शरीर व तन्त्र को लचीली रखने के लिए चौरासी आसन बताती है। जिस तरह से हम अपने वाहन और उपकरणों की देखभाल करते हैं उसी तरह हमें अपने शरीर की देखभाल करनी चाहिये। हमें इसे उचित व्यायाम देना चाहिये। यहाँ, हमें आसन करने की

आवश्यकता है। यह हमारे अन्दर बीमारी के प्रति प्रतिरोधक क्षमता का विकास करते हैं और हमें चुस्त–दुरुस्त रहने के योग्य बनाते हैं।

4. **प्राणायामः** प्राणायाम, सांसों को संयमित करके प्राणिक शक्ति पर नियंत्रण प्राप्त करना है। हवा को अन्दर खींचना, योग में 'पूरक' कहलाता है। और हवा को बाहर फेंकना 'रेचक' कहलाता है। सांस को बाहर फेंकने से पहले उसे कुछ पल रोकना 'आन्तरिक कुम्भक' कहलाता है। कुम्भक को पांच सेकेन्ड से ज्यादा नहीं करना चाहिये। प्राणायाम किसी विशेषज्ञ के मार्गदर्शन में ही करना चाहिये। नहीं तो उपयोगी होने के बजाय यह हानिकारक हो सकता है।

चित्र 25.1

हवा के साथ–साथ हम वातावरण से कुछ आवश्यक ऊर्जा भी लेते हैं जिसे प्राण या जीवनी शक्ति कहा जाता है। लय में सांस लेना हमारे शरीर में रक्त–संचार और प्राणिक या आवश्यक ऊर्जा के संचार को बढ़ाता है। यह जीवनी शक्ति को व्यवस्थित करने की नियमित एवं वैज्ञानिक प्रक्रिया है और हमारे पूर्ण व्यक्तित्व विकास के लिये पूर्ण रूप से उपयोग करने की कला है।

5. **प्रत्याहारः** इसका शाब्दिक अर्थ 'परे होना' है। प्रत्याहार में हम अपनी इन्द्रियों को बाहरी चीजों से दूर करते हैं और उनको अन्दर की ओर मोड़ते हैं। हमारी प्रमुख पांच इन्द्रियां हैं जो दृष्टि, घ्राण, श्रवण, स्पर्श और स्वाद हैं। योग में हम अपनी इन्द्रियों को शान्त रखने का अभ्यास करते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार योग के बाहरी सहायक कहे जाते हैं। अगले चरण के लिये आपको और अधिक गहराई में जाना होगा। और वे आन्तरिक सहायक कहलाते हैं

6. **धारणाः** धारणा किसी निश्चित वस्तु पर मन को एकाग्र करना है। वह वस्तु हमारे शरीर का हिस्सा हो सकती है जैसे हमारी भौहों में बीच का स्थान या वह हमारे शरीर के बाहर भी हो सकती है जैसे एक मोमबत्ती की ज्योति या चन्द्रमा या कोई भगवान या साधु का रूप। हमारा ध्यान या तो आन्तरिक या बाह्य वस्तु पर केन्द्रित होना चाहिये। यह अभ्यास एकाग्रता को बढ़ाता है जोकि हमारे अध्ययन और व्यावसायिक जीवन में सहायता प्रदान करता है।

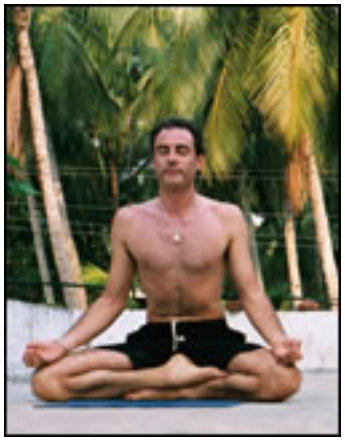

7. **ध्यानः** जब हम अपेक्षाकृत अधिक समय के लिये किसी वस्तु पर धारणा या अवधान करना सीखते हैं तो यह नियमित विचारमग्नता ही ध्यान या एकाग्रता कहलाती है। ध्यान में हम उसके साक्षी हैं जो हमारे मन में चल रहा है। लेकिन हम भावनात्मक या बौद्धिक रूप से उन

घटनाओं से नहीं जुड़ते हैं। इसी को ध्यान कहा जाता है। यह सभी प्रकार की मानसिक व्याकुलताओं की सबसे अच्छी औषधि है।

8. **समाधिः** समाधि में मन इतनी गहनता से वस्तु के विचार में डूब जाता है कि वह स्वयं को उसमें खो देता है और उसे अपनी सुध नहीं रहती। जब वह समाधि से बाहर आता है केवल तब वह अनुभव करता है कि यह समाधि की अवस्था थी जहाँ समय और स्थान का बोध पूरी तरह अनुपस्थित था। समाधि में व्यक्तिगत चेतना, शुद्ध चेतना में समाहित हो जाती है।

एक व्यक्ति जो योग के अष्टांग मार्ग में सफलतापूर्वक प्रगति करता है और विकसित व्यक्ति बन जाता है। वह क्रोध, काम और दूसरे दोषों से मुक्त हो जाता है। वह सम्पूर्ण मानवता का प्रेमी बन जाता है। वह अपना कार्य पूर्ण श्रेष्ठता के साथ करता है लेकिन अपनी उपलब्धियों पर गर्व नहीं करता। वह भगवान के हाथ में एक यन्त्र बन जाता है। यह अष्टांग मार्ग केवल चयनित लोगों के लिये ही नहीं हैं। प्रत्येक व्यक्ति उस पर चल सकता है।

पाठगत प्रश्न 25.6

जोड़े बनाओ–

1.	सत्य	कामेच्छा पर रोकथाम
2.	अस्तेय	हिंसा न करना
3.	अपरिग्रह	सत्य
4.	अहिंसा	जमाखोरी न करना
5.	ब्रह्मचर्य	चोरी न करना

आपने क्या सीखा

- पतंजलि ने योग को चेतना की उस स्थिति के रूप में परिभाषित किया है जहाँ विचारों और भावनाओं की लहरें नहीं हैं। इस स्थिति में हमारा मन, वैश्विक मन के साथ एक हो जाता है। पतंजलि ने समस्त योग के ज्ञान को संक्षिप्त रूप में संकलित किया है। 196 सूत्रों में उन्होंने मानसिक शक्तियों की प्रकृति तथा योग के अष्टांग मार्गों को वर्णित किया है। अष्टांग मार्ग इस प्रकार हैं–

  1. यमः यौगिक जीवन में सामाजिक प्रसंग के लिये नियम और अभिवृत्तियाँ।

2. नियमः व्यक्तिगत शुद्धता के लिये नियम और अभिवृत्तियाँ।
3. आसनः शरीर को चुस्त और मन को जागृत रखने के लिए सही मुद्रा।
4. प्राणायामः श्वासं के द्वारा प्राणिक शक्ति को अन्दर और बाहर करने में नियंत्रण।
5. प्रत्याहारः अपनी इन्द्रियों को बाहर से हटाकर बन्द करना अन्दर ले जाना।
6. धारणाः एक निश्चित वस्तु पर मन को एकाग्र करना।
7. ध्यानः बहुत समय के लिये वहाँ रुकना।
8. समाधिः ध्यान की वस्तु के साथ एक हो जाना।

- यह शुद्धता की प्रक्रिया है। शुद्ध चैतन्य में दिव्य वैश्विक चेतना प्रतिबिम्बित होती है। जब यह होता है तो मनुष्य के जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन होता है। इस अवस्था में व्यक्ति परम–आनन्द की अनुभूति करता है और वह दिव्य गुणों का सार बन जाता है, जैसे प्रेम, करुणा आदि।
- योग का अभ्यास करके प्रत्येक व्यक्ति मन और शरीर पर अधिपत्य प्राप्त कर सकता है। उसके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है।

पाठांत प्रश्न

1. अपेक्षाकृत मन की अपरिवर्तनीय अवस्थायें कौन सी हैं?
2. योग कैसे हमारे व्यवहार को आकार देता है, स्पष्ट कीजिए।
3. नियमों का वर्णन कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

25.1

1. शैशव
2. मनोवैज्ञानिक गुण
3. जनन क्रियायें
4. योग

25.2

1. योग से सीखने और स्मृति में प्रगति होती है।
2. आनन्द के अवसर जैसे।

25.3

1. c 2. d 3. b 4. a

25.4

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य

25.5

1. महर्षि पतंजलि
2. मनः, बुद्धि, अहंकार, चित्त
3. परिवर्तनीय और अपरिवर्तनीय

25.6

1. c 2. e 3. d 4. b 5. a

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत

1. खण्ड 25.5 देखिये।
2. खण्ड 25.6 देखिये।
3. खण्ड 25.6 देखिये।